सेल्वी जयलिता जे. और अन्य

बनाम

कर्नाटक राज्य और अन्य

(रिट याचिका (दांडिक) 2013 का न.154)

30 सितंबर, 2013

[न्यायमूर्ति डॉ. बी. एस. चौहान और न्यायमूर्ति एस. ए. बोबडे]

अधिवक्ता-विशेष लोक अभियोजक की नियुक्ति (एस. पी. पी.)-नियुक्ति को वापस लेना/रद्द करना-वैधता - कथित रूप से होने के लिए याचिकाकर्ताओं के खिलाफ कार्यवाही ज्ञात आय के अनुपात से अधिक संपत्ति-वारंट मामला भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के तहत-प्रतिवादी सं 4 एस. पी. पी. के रूप में नियुक्त-सात महीने बाद, जब मुकदमा पूरा होने वाला था, तो प्रतिवादी नं. 4 राज्य सरकार द्वारा वापस लिया गया-प्रतिवादी नं. 4 : एस. पी. पी. के रूप में -प्रतिवादी सं. 4 को एस पी पी से हटाने की अधिसूचना -वैधता-आयोजितः तथ्यों पर, इसे निरस्त किया जा सकता है -प्रत्यर्थी सं. 4 की नियुक्ति सरकार द्वारा बनाया गया था उस की क्षमता या उपयुक्तता पर सवाल उठाए बिना न ही सरकार ने इस संबंध में कोई मुद्दा उठाया परामर्श का तरीका/मुद्दा-यदि सरकार को प्रत्यर्थी नं4 , का नाम जो उच्च न्यायालय के कार्यवाहक मुख्य न्यायाधीश द्वारा भेजा गया था, किसी भी आधार पर स्वीकार्य नहीं था , यह कर्तव्य था कि नाम को

कार्यवाहक को वापस संदर्भित किया जाए मुख्य न्यायाधीश ने विचारों और सुझावों के साथ, जो नहीं किया था -इसके विपरीत, वे प्रतिवादी 4 बिना किसी आपत्ति के एस. पी. पी. के रूप में नियुक्त करने के लिए आगे बढ़े, जो पहले से ही कई वर्षों से लोक अभियोजक थे-इस बात का संकेत देने के लिए रिकॉर्ड में कुछ भी नहीं है कि राज्य सरकार को किसी के द्वारा प्रतिवादी सं.4 को नियुक्त करने के लिए मजबूर किया गया था। - सरकार ने स्वेच्छा से प्रक्रिया में स्वीकार किया और अब शिकायत उठाने का हकदार नहीं है-इसके अलावा, नियुक्ति लगभग सात महीने तक बिना किसी आपत्ति के जारी रही-हालाँकि इसमें कोई संदेह नहीं है सरकार के पास नियुक्ति वापस लेने या रद्द करने के लिए धारा 21 सामान्य खंड अधिनियम के तहत सकती है, लेकिन शक्ति का वह प्रयोग वर्तमान मामले में ऐसा प्रतीत होता है कि कानून रूप से दुर्भावना से दूषित किया गया है जहाँ तक रिकॉर्ड में यह स्पष्ट है कि बीच-बीच में सरकार बदलने के परिणामस्वरूप बिना किसी स्पष्ट कानूनी रूप से टिकाऊ कारण के लिए राय में अचानक परिवर्तन हुआ- अचानक संक्रमणकालीन निर्णय स्पष्ट रूप से अनुचित अविवेक का एक कार्य था जो ऐसा प्रतीत नहीं होता है सद्भावना पर आधारित हो -प्रतिवादी सं. 4 को हटाने का आदेश दुर्भावना का उत्पाद था- सामान्य खंड अधिनियम, 1897-भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988।

आपराधिक मुकदमा-निष्पक्ष सुनवाई-निर्धारित आपराधिक प्रक्रिया का मुख्य उद्देश्य और ऐसी निष्पक्षता किसी भी तरह से बाधित या धमकाना

नहीं चाहिए -निष्पक्ष सुनवाई में अभियुक्त, पीड़ित और समाज के हित शामिल हैं-मुक्त और निष्पक्ष सुनवाई अनुच्छेद 21 संविधान की अनिवार्य शर्त है।-निष्पक्ष सुनवाई में कोई भी बाधा अनुच्छेद 14 संविधान का उल्लंघन हो सकता है।-निष्पक्ष सुनवाई आपराधिक न्यायशास्त्र का केंद्र है और एक तरह से लोकतांत्रिक राजनीति का एक महत्वपूर्ण पहलू है और कानून के शासन द्वारा शासित है-निष्पक्ष सुनवाई से इनकार करना दंडनीय न्यायशास्त्र को सुली पर चढ़ाना है। मानवाधिकार-भारत का संविधान, 1950-अनुच्छेद 12 और 14 -मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा-अनुच्छेद 12

आपराधिक मुकदमा-याचिकाकर्ताओं के खिलाफ कार्यवाही कथित रूप से उनके ज्ञात आय के अनुपात से अधिक आय संपत्ति होना--भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के तहत वारंट मामला-विचारण पूरा होने के करीब-संबंधित विशेष न्यायाधीश की आसन्न सेवानिवृत्ति-सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष न्यायालय मुकदमे के समापन तक विशेष न्यायाधीश के कार्यकाल को बढ़ाने के लिए निर्देश के लिए प्रार्थना की गई-निर्धारितः यह संबंधित कानून के अनुसार राज्य के अधिकार क्षेत्र में आने वाला मामला है - न्यायिक अधिकारियों की सेवाएँ राज्य में नियम 2004 द्वारा शासित - राज्य सरकार सेवानिवृत्ति के बाद अनुबंध के आधार विशेष न्यायाधीश को वर्तमान मुकदमे को समाप्त करने की अवधि के लिए नियुक्त करने के लिए सक्षम है पर, हालांकि उच्च न्यायालय के परामर्श से आवश्यकतानुसार

संविधान के अनुच्छेद 235 के अनुसार-इसके अलावा, इस तरह के कार्यप्रणाली को निर्दिष्ट 2004 के नियमों के तहत निर्धारित तरीके में अपनाया जाना चाहिए। उच्च न्यायालय को प्रशासनिक पक्ष पर निर्णय लेने के लिए मामले को भेजा गया कि क्या, संविधान के अनुच्छेद-21 के तहत गारंटी के अनुसार मुकदमे को तीव्रता से समाप्त करने के लिए विशेष न्यायाधीश की सेवाओं का विस्तार आवश्यक है-कर्नाटक न्यायिक सेवा (भर्ती) नियम, 2004 - नियम 11 (2)-मैक्सिम "एक्सप्रेसिओ यूनिअस एस्ट एक्सक्लूसिओ अल्टरियस"-भारत का संविधान, 1950 - कलाएँ। अनुच्छेद-21 और 235 -भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988।

याचिकाकर्ताओं के खिलाफ तमिलनाडु राज्य में कथित रूप से उनकी ज्ञात आय से अधिक संपत्ति होने के लिए मुकदमा चलाया गया था। याचिकाकर्ताओं ने अपने मुकदमे को न्यायहित में पड़ोसी राज्य कर्नाटक में इस आधार पर स्थानांतरित करने के लिए सर्वोच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया। न्याय, कि तमिलनाडु राज्य में एक निष्पक्ष विचारण संभव नहीं था। कर्नाटक राज्य को मामलों को स्थानांतरित करते हुए, सर्वोच्च न्यायालय ने विशेष लोक अभियोजक की नियुक्ति के लिए निर्देश जारी किया (एसपीपी)।

कर्नाटक सरकार ने 'बी', एक पूर्व महाधिवक्ता को एस. पी. पी. के रूप में अभियोजन संचालन करने के लिए नियुक्त किया। 'बी ', ने हालांकि,

एस. पी. पी. के रूप में बने रहने की अपनी असमर्थता व्यक्त की। कर्नाटक सरकार ने तब उत्तरदाता सं. 4 को एसपीपी के रूप में नियुक्त करने के लिए एक अधिसूचना जारी की। । इसके बाद, लगभग सात महीने बाद, राज्य सरकार ने पत्र दिनांकित 10-09-2013 जारी किया, जिसमें उत्तरदाता नं4 को लंबित मामले में विशेष न्यायाधीश के समक्ष उपस्थित नहीं होने के लिए कहा गया। इसके बाद याचिकाकर्ताओं ने एक रिट दायर की उत्तरदाता न.4 को लिखे गए उक्त पत्र को चुनौती देने और विशेष न्यायाधीश को विचारण को समाप्त करने के निर्देश चाहे गए ।

जबकि उक्त रिट याचिका इस न्यायालय में लंबित थी, कर्नाटक सरकार ने कर्नाटक उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश से प्रत्यर्थी सं. 4 की नियुक्ति एसपीपी के रूप में वापस लेने के लिए परामर्श किया । मुख्य न्यायाधीश ने पात्र दिनांक 14.9.2013 के द्वारा राज्य सरकार के दृष्टिकोण से सहमति व्यक्त की, कर्नाटक सरकार की अधिसूचना दिनांकित 16.9.2013 द्वारा प्रत्यर्थी की नियुक्ति सं, 4 को वापस ले लिया गया। पीड़ित, याचिकाकर्ताओं ने एक और रिट याचिका दायर की, जिसमें उक्त आदेशों दिनांकित 14.9.2013 16.9.2013 को चुनौती दी गई।

याचिकाकर्ताओं ने इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया कि प्रतिवादी नं. 4 एस. पी. पी. की नियुक्ति को वापस लेना मुकदमे को आगे बढ़ाने के लिए एक सोचा-समझा कदम था चूंकि विशेष न्यायाधीश के

कार्यकाल समापन की ओर था विचार लगभग खत्म हो गया था और इन परिस्थितियों में एस पी पी की नियुक्ति को लगभग 7 माह के कार्य करने के पश्चात् रद्ध करना विचारण से बचने के लिए दुर्भावना से प्रेरित था चूंकि रज्य सरकार में परिवर्तन हुआ था। तदानुसार इस न्यायालय के समक्ष प्रतिवादी सं- 4 की एस पी पी के रूप में नियुक्ति के आदेश को वापस लेने / रद्ध करने तथा साथ ही विशेष न्यायाधीश के कार्यकाल को मुकदमें के निपटने तक विस्तारित किये जाने की प्रार्थना की गई।

रिट याचिकाओं का निपटारा करते हुए, न्यायालय ने

अभिनिर्धारितः

1. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, हमारा सुविचारित मत है कि श्री जी. भवानी सिंह-प्रत्यर्थी संख्या 4 को हटाने का आदेश दुर्भावनापूर्ण है और विवादित आदेश कानून की नजर में टिकाऊ नहीं है अतः इसे रद्द किया जाता है। (पैरा 32)

2. कर्नाटक सरकार द्वारा श्री जी भवानी सिंह को एसपीपी के पद से हटाने का जो कारण बताया गया है, वह कुछ असामान्य प्रतीत होता है। यह सच हो सकता है कि श्री जी भवानी सिंह का नाम कर्नाटक सरकार द्वारा उच्च न्यायालय के तत्कालीन कार्यवाहक मुख्य न्यायाधीश को प्रस्तुत चार नामों की सूची में नहीं था और यह नाम कर्णाटक सरकार द्वारा एसपीपी की नियुक्ति किए जाने से पहले कार्यवाहक मुख्य न्यायाधीश से

लिया गया था; लेकिन यह भी उतना ही सच है कि नियुक्ति सरकार द्वारा पदधारी की क्षमता या उपयुक्तता पर सवाल उठाए बिना की गई थी और न ही सरकार ने परामर्श के तरीके/मुद्दे के संबंध में कोई मुद्दा उठाया था। इसके विपरीत, सिफारिश प्राप्त करने पर, सरकार बिना किसी आपत्ति के अधिसूचना जारी करके श्री जी. भवानी सिंह को नियुक्त करने के लिए आगे बढ़ी। इसके अलावा नियुक्ति लगभग सात महीने तक बिना किसी विरोध के जारी रही। (पैरा 15)

3. जब भी कानून द्वारा परामर्श अनिवार्य होता है, तो इसमें आवश्यक रूप से दो प्राधिकरण शामिल होते हैं; एक, जिस पर परामर्श करने के लिए एक कर्तव्य डाला जाता है और दूसरा जिसके पास परामर्श करने का संबंधित अधिकार है। यह शिकायत कि कोई परामर्श नहीं किया गया है या अपर्याप्त परामर्श , आमतौर पर उस प्राधिकारी द्वारा उठाया जाता है, जिसे परामर्श लेने का अधिकार है, इस मामले में मुख्य न्यायाधीश। जिस प्रकार का यह कर्तव्य है कि वह परामर्श करे और जो उस कर्तव्य में विफल रहा हो, उसके लिए यह शिकायत करना वैध नहीं है कि कोई परामर्श नहीं किया गया है। वर्तमान मामले में ठीक यही हुआ है। यदि सरकार को कार्यवाहक मुख्य न्यायाधीश द्वारा भेजा गया श्री जी भवानी सिंह का नाम किसी भी आधार पर स्वीकार्य नहीं लगता है, तो यह उनके विचारों और सुझावों के साथ कार्यवाहक मुख्य न्यायाधीश के नाम को वापस भेजने के लिए बाध्य था, जो उनके द्वारा नहीं किया गया था। इसके

विपरीत, उन्होंने श्री जी भवानी सिंह को बिना किसी आपत्ति के एसपीपी के रूप में नियुक्त किया, जो पहले से ही कई वर्षों तक लोक अभियोजक रहे थे। रिकॉर्ड में ऐसा कुछ भी नहीं है जिससे यह संकेत मिले कि कर्नाटक सरकार को उक्त नियुक्ति करने के लिए किसी ने मजबूर किया था। इस प्रकार सरकार ने स्वेच्छा से इस प्रक्रिया को स्वीकार कर लिया और अब वह इस शिकायत को उठाने की हकदार नहीं है। इस प्रकार शिकायत निराधार है और इसमें कोई विश्वास नहीं है। (पैरा 17)

चंद्रमौलेश्वर प्रसाद बनाम "पटना उच्च न्यायालय और अन्य, ए. आई. आर. 1970 (2) एस. सी. 370; भारत संघ बनाम संकलचंद हिमतलाल शेठ और अन्य, ए. आई. आर. 1977 एस. सी. 2328; 1978 गुजरात राज्य बनाम गुजरात राजस्व न्यायाधिकरण बार एसोसिएशन, ए. आई. आर. 2013 एस. सी. 107; 2012 (10) और गुजरात राज्य और अन्य बनाम न्यायमूर्ति आर. ए. मेहता (सेवानिवृत्त) और अन्य, (2013) 3 एस. सी. सी. 1 लागू नहीं होते है।

4. तत्काल मामले में, जैसा कि बहस के दौरान खुलासा किया गया है, मई 2013 में सत्ता में राजनीतिक दल का परिवर्तन हुआ है और इस प्रकार, राज्य सरकार के आदेश को राजनीति से प्रेरित होने का आरोप लगाया गया है। हमारी राय में, हालांकि सरकार के पास सामान्य खंड अधिनियम की धारा 21 के तहत नियुक्ति को वापस लेने या रद्द करने की

निस्संदेह शक्ति है, लेकिन शक्ति का वह प्रयोग दूषित प्रतीत होता है वर्तमान मामले में कानून में दुर्भावना से क्योंकि यह रिकॉर्ड पर स्पष्ट है कि बीच में सरकार के बदलने के परिणामस्वरूप अचानक राय में बदलाव हुआ है जो बिना किसी विवेकपूर्ण कानूनी रूप से स्थायी कारण के अचानक है। तेज अवस्था परिवर्तनकालीन निर्णय एक ऐसे इरादे से प्रेरित स्पष्ट रूप से अनुचित अविवेक का कार्य था जो नेक नियत पर आधारित प्रतीत नहीं होता है। (पैरा 20)

5. मामले के रिकॉर्ड से पता चलता है कि विद्वान विशेष न्यायाधीश ने 20.11.2012 को वर्तमान मामले की सुनवाई शुरू की थी। उन्होंने द.प्र.स. की धारा 313 के तहत दिसंबर 2012 और जनवरी 2013 में आरोपियों के बयान दर्ज किए थे। न्यायाधीश ने बचाव पक्ष के 99 गवाहों को परिक्षित किया और उनके समक्ष बचाव पक्ष के 384 साक्ष्य पेश किए गए। बचाव पक्ष ने विशेष न्यायाधीश के समक्ष अपनी बहस पूरी की और एसपीपी ने 23.08.2013 को अंतिम बहस शुरू कीं। उन्हें अचानक रोक दिया गया क्योंकि 26-08-2013 को एसपीपी को कार्य जारी न रखने के लिए कहा गया था। इस मामले में साक्ष्य बहुत भारी है क्योंकि यह 34000 पृष्ठों का है। यदि कोई नया न्यायाधीश मामले की सुनवाई शुरू करता है, तो उसे मामले में शामिल तथ्यात्मक और कानूनी बारीकियों को समझने में लंबा समय लगेगा। तदनुसार, हमें यह कहने में कोई संकोच

नहीं है कि एसपीपी के रूप में श्री जी भवानी सिंह की नियुक्ति को रद्द करने संबंधी अधिसूचना रद्द किये जाने योग्य है। (पैरा 21)

6.1. शासन के सिद्धांतों का परीक्षण न्याय, समानता और निष्पक्षता की कसौटी पर किया जाना चाहिए। इसलिए, जब तक यह नहीं पाया जाता कि प्राधिकरण द्वारा पहले किया गया कार्य या तो वैधानिक प्रावधानों के विपरीत है या अनुचित है, या सार्वजनिक हित के खिलाफ है, तब तक राज्य को केवल इसलिए अपना रुख नहीं बदलना चाहिए क्योंकि दूसरा राजनीतिक दल सत्ता में आ गया है। इस प्रकार, यह स्पष्ट कानून है कि यदि विवेकाधीन शक्ति का उपयोग अनधिकृत उद्देश्य के लिए किया गया है, तो यह आम तौर पर महत्वहीन है कि इसका निदान अच्छी नियत से काम कर रहा था या बुरे इरादे से और आदेश कमजोर हो जाता है और रद्द करने के लिए उत्तरदायी हो जाता है। (पैरा 22 व 25)

6.2. निष्पक्ष सुनवाई आपराधिक प्रक्रिया का मुख्य उद्देश्य है और इस तरह की निष्पक्षता को किसी भी तरह से बाधित या धमकी नहीं दी जानी चाहिए। निष्पक्ष सुनवाई में आरोपी, पीड़ित और समाज के हित शामिल हैं। सभी परिस्थितियों में, न्यायालयों का कर्तव्य है कि वे न्याय के प्रशासन में जनता के विश्वास को बनाए रखें और इस तरह का कर्तव्य 'कानून की महिमा' को प्रमाणित करना और बनाए रखना है और अदालतें

आपराधिक कार्यवाही के संबंध में होने वाले कष्टप्रद या दमनकारी आचरण से आंखें नहीं मूंद सकती हैं। (पैरा 26)

6.3. स्वतंत्र और निष्पक्ष सुनवाई संविधान के अनुच्छेद 21 का एक अनिवार्य हिस्सा है। निष्पक्ष सुनवाई का अधिकार न केवल एक बुनियादी मौलिक अधिकार है, बल्कि एक मानव अधिकार भी है। इसलिए, निष्पक्ष सुनवाई में कोई भी बाधा संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन हो सकती है। हमारे संविधान के अनुच्छेद 21 में निहित निष्पक्ष सुनवाई के अधिकार का प्रावधान है। इसलिए, निष्पक्ष सुनवाई आपराधिक न्यायशास्त्र का दिल है और एक तरह से, लोकतांत्रिक राजनीति का एक महत्वपूर्ण पहलू है और कानून के शासन द्वारा शासित है। निष्पक्ष सुनवाई से इनकार करना मानवाधिकारों को सूली पर चढ़ाना है। (पैरा 26)

तमिलनाडु राज्य और अन्य बनाम के. श्याम सुंदर और अन्य ए. आई. आर 2011 एस. सी. 3470: 2011 (11) एससीआर 1094; एम. आई. बिल्डर्स प्रा. लिमिटेड बनाम वी. राधे श्याम साहू और अन्य ए.आई.आर. 1999 एससी 2468: 1999 (3) एससीआर 1066; ओंकार लाल बजाज आदि बनाम भारत संघ और अन्य ए. आई. आर 2003 एस. सी 2562: 2002 (5) पूरक एससीआर 605; कर्नाटक राज्य और अन्य बनाम अखिल भारतीय निर्माता संगठन और अन्य एआईआर 2006 एससी 1846: 2006 (1) पूरक एससीआर 86; ए. पी. डेयरी विकास निगम महासंघ बनाम बी.

वेंकटरमण बनाम. भारत संघ और अन्य ए. आई. आर 1979 एस. सी. 49:1979 (2) एससीआर 202; रवि यशवंत भोइर बनाम जिला कलेक्टर, रायगढ़ और अन्य ए. आई. आर 2012 एस. सी. 1339: 2012 (3) एससीआर 775; कलाभारती विज्ञापन बनाम हेमंत विमलनाथ नरीचनिया और अन्य आकाशवाणी 2010 एससी 3745: 2010 (10) एस. सी. आर. 971; श्रीमती त्रिवेणीबेन बनाम गुजरात राज्य एआईआर 1989 एससी 1335: 1989 (1) एससीआर 509; ए. आर. अंतुले और अन्य बनाम आर. एस. नायक ए. आई. आर. 1992 एससी 1701 : 1991 (3) पूरक एस. सी. आर. 325; राज देव शर्मा (द्वितीय) बनाम राज्य बिहार (1999) 7 एस. सी. सी. 604: 1999 (3) पूरक एससीआर 124; द्वारका प्रसाद अग्रवाल (मृ.) द्वारा विधिक प्रतिनिधि और अन्य द्वारा बनाम वी. बी. डी. अग्रवाल और अन्य ए. आई. आर 2003 एस. सी. 2686: 2003 (1) पूरक एस. सी. आर. 336; के. अनबाझगन बनाम सुपदी पुलिस ए. आई. आर 2004 एस. सी. 524: 2003 (5) पूरक एस. सी. आर. 610; ज़हिरा हबीबुल्लाह शेख (5) बनाम की स्थिति गुजरात ए. आई. आर. 2006 एस. सी. 1367 2006 (2) एस. सी. आर. 1081; नूर आगा बनाम पंजाब और अन्य राज्य (2008) 16 एससीसी 417: 2008 (10) एससीआर 379 ; कैप्टन अमरिंदर सिंह बनाम प्रकाश सिंह बादल और अन्य (2009) 6 एससीसी 260: 2009 (9) एस. सी. आर. 194; मो. हुसैन @ जुल्फीकार अली बनाम ए.आई.आर 2012 (1) एस. सी. आर. 64; सुदेवानंद बनाम सी. बी. आई.

के माध्यम से राज्य (2012) 3 एस. सी. सी. 387; रट्टीराम और अन्य बनाम एम. पी. राज्य (2012) 4 एस. सी. सी. 516: 2012 (3) एस. सी. आर. 496 और नताशा सिंह बनाम सीबीआई (2013) 5 एस. सी. सी. 741-पर निर्भर।

7.1. याचिकाकर्ताओं की ओर से उपस्थित वरिष्ठ वकील श्री नफाडे ने अंत में तर्क दिया कि यह संविधान के अनुच्छेद 142 के तहत शक्तियों के प्रयोग के लिए एक उपयुक्त मामला होगा, जिसमें सक्षम प्राधिकारी को विशेष न्यायाधीश के कार्यकाल का विस्तार करने का निर्देश दिया जाए, जो 30 सितंबर, 2013 को सेवानिवृत्ति की आयु तक पहुंचने वाले हैं।हालांकि, अधिकार क्षेत्र का ऐसा प्रयोग कानून के किसी भी स्पष्ट प्रावधान के विपरीत नहीं होना चाहिए।इस न्यायालय को आम तौर पर संविधान के अनुच्छेद 142 के तहत अपनी असाधारण शक्ति का प्रयोग करते हुए पूर्ण न्याय करने के लिए कोई आदेश पारित नहीं करना चाहिए यदि ऐसा आदेश किसी भी वैधानिक प्रावधानों का उल्लंघन करता है। हम यह कहने का इरादा नहीं रखते हैं कि विशेष न्यायाधीश के कार्यकाल को बढ़ाना अवैध होगा, लेकिन यह संबंधित कानून के अनुसार राज्य के अधिकार क्षेत्र के भीतर का मामला है। अभी तक एक निर्विवाद कानूनी सिद्धांत है कि जब क़ानून किसी विशेष प्रक्रिया का प्रावधान करता है, तो प्राधिकरण को उसी का पालन करना होगा और इसके उल्लंघन में कार्य करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। पूर्वोक्त स्थापित कानूनी प्रस्ताव एक कानूनी मैक्सिम पर

आधारित है, जिसका अर्थ है कि यदि कोई क़ानून किसी चीज़ को किसी विशेष तरीके से करने का प्रावधान करता है, तो इसे उस तरीके से और किसी अन्य तरीके से नहीं किया जाना चाहिए और किसी अन्य कार्यप्रणाली का पालन करने की अनुमति नहीं है। (पैरा 27,28, और 29)

7.2. जहां तक न्यायिक अधिकारियों का संबंध है, उनकी सेवाएं कर्नाटक न्यायिक सेवा (भर्ती) नियम, 1983 द्वारा शासित होती हैं 1983 के नियमों को कर्नाटक न्यायिक सेवा (भर्ती) नियम 2004 द्वारा निरस्त कर दिया गया है। इसके नियम 11 (2) से यह स्पष्ठ है कि राज्य सरकार संविधान के अनुच्छेद 235 के तहत आवश्यक उच्च न्यायालय के परामर्श के साथ, वर्तमान मुकदमे को समाप्त करने के लिए आवश्यक अवधि के लिए अपनी सेवानिवृत्ति के बाद अनुबंध के आधार पर विद्वान विशेष न्यायाधीश को नियुक्त करने के लिए सक्षम है। इसके अलावा, हमारी विनम्र राय में, इस तरह के कार्यप्रणाली को नियम 2004 के तहत निर्धारित तरीके से अपनाया जाना चाहिए और इसके मद्देनजर, इस मामले पर राज्य सरकार द्वारा उच्च न्यायालय के परामर्श से विचार किए जाने की आवश्यकता है। (पैरा 30)

7.3 . इसलिए, उपर्युक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, यह मामला प्रशासनिक पक्ष पर निर्णय लेने के लिए कर्नाटक उच्च न्यायालय को भेजा कि क्या संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत गारंटी के अनुसार शीघ्रता से

विचारण समाप्त करने के लिए विद्वान विशेष न्यायाधीश की सेवाओं के विस्तार की आवश्यकता है। (पैरा 31)

ए. बी. भास्कर राव बनाम पुलिस निरीक्षक, सीबीआई विशाखापट्टनम (2011) 10 एस. सी. सी. 259: 2011 (12) एस. सी. आर. 718; तेरी ओट एस्टेट (पी) लिमिटेड बनाम यूटी, चंडीगढ़ और अन्य (2004) 2 एससीसी 130 : 2003 (6) पूरक एस. सी. आर. 1235; मनीष गोयल वाई. रोहिणी गोयल आकाशवाणी 2010 एससी 1099: 2010 (2) एस. सी. आर. 414; उत्तर राज्य प्रदेश बनाम संजय कुमार (2012) 8 एससीसी 537: 2012 (7) एससीआर 359 ; उत्तर प्रदेश राज्य बनाम सिंघारा सिंह और अन्य एआईआर 1964 एससी 358 और महालेखाकार, मध्य राज्य प्रदेश बनाम एस. के. दुबे और अन्य (2012) 4 एस. सी. सी. 578-पर निर्भर।

टेलर बनाम टेलर (1876) 1 सीएचडी-संदर्भित।

मामला कानून संदर्भः

1.970 (2) एससीआर 666	लागू नहीं होने वाला पैरा 17
1978 (1) एससीआर 423	लागू नहीं होने वाला पैरा 17
2012 (10) एससीआर 816।	लागू नहीं होने वाला पैरा 17
2013 (1) एससीआर 1	लागू नहीं होने वाला पैरा 17

2011 (11) एससीआर 1094	निर्भरता	पैरा 22
1999 (3) एससीआर 1066	निर्भरता	पैरा 22
2002 (5) पूरक। एससीआर 605	निर्भरता	पैरा 22
2006 (1) पूरक। एससीआर 86	निर्भरता	पैरा 22
एआईआर 2011 एससी 3298	निर्भरता	पैरा 22
1979 (2) एससीआर 202	निर्भरता	पैरा 23
2012 (3) एससीआर 775	निर्भरता	पैरा 24
2010 (10) एससीआर 971	निर्भरता	पैरा 24
1989 (1) एससीआर 509	निर्भरता	पैरा 26
1991 (3) पूरक। एस. सी. आर 325	निर्भरता	पैरा 26
1999 (3) पूरक। एससीआर 124	निर्भरता	पैरा 26
2003 (1) पूरक। एससीआर 336	निर्भरता	पैरा 26
2006 (2) एससीआर 1081	निर्भरता	पैरा 26
2008 (10) एससीआर 379	निर्भरता	पैरा 26
2009 (9) एससीआर 194	निर्भरता	पैरा 26
2012 (1) एससीआर 64	निर्भरता	पैरा 26
(2012) 3 एस. सी. सी. 387	निर्भरता	पैरा 26

2012 (3) एससीआर 496	निर्भरता	पैरा 26
(2013) 5 एससीसी 741	निर्भरता	पैरा 26
2011 (12) एससीआर 718	निर्भरता	पैरा 26
2003 (6) पूरक। एस. सी. आर., 1235	निर्भरता	पैरा 26
2010 (2) एससीआर 414	निर्भरता	पैरा 26
2012 (7) एससीआर 359	निर्भरता	पैरा 26
ए. आई. आर 1964 एस. सी. 358	निर्भरता	पैरा 26
(1876) 1 सीएच डी संदर्भित किया गया है		पैरा 29
(2012) 4 एस. सी. सी. 578	निर्भरता	पैरा 26

मूल दांडिक न्यायक्षेत्र : रिट याचिका (आपराधिक) 2013 की सं. 154 आदि।

भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत।

के साथ

रिट याचिका (दांडिक) 2013 का सं. 166

शेखर नाफडे, बी. कुमार, सी. मणिशंकर, एस. से. याचिकाकर्ताओं की ओर से ए. अशोकन, जय किशोर सिंह।

रवि वर्मा कुमार, ए. जी. प्रो. विकास सिंह शुनमुगासुंदरम, अनीता शेनॉय, विश्रुति विजय, नेहा सिंह, वी. जी. प्रगसम, एस. प्रभु रामसुब्रमण्यम, एस. जे. अरस्तू, दीपिका कालिया, संकेत, दीप्तकीर्ति वर्मा, नेहा शर्मा, एम. उत्तरदाताओं के लिए योगेश कन्ना, ए. शांता कुमार, के. शशिकल, वनिता चंद्रकांत गिरि।

न्यायालय का निर्णय इनके द्वारा दिया गया था

न्या. डा. बी.एस. चौहान

1. याचिकाकर्ताओं ने कर्नाटक सरकार द्वारा पारित दिनांक 10.9.2013 के आदेश को चुनौती दी है, जिसमें श्री जी भवानी सिंह – प्रत्यर्थी नंबर 4, विशेष लोक अभियोजक (इसके बाद 'एसपीपी' के रूप में संदर्भित) को याचिकाकर्ताओं के खिलाफ लंबित अभियोजन में उक्त मामले में उपस्थित नहीं होने के लिए कहा गया था; कर्णाटक उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश द्वारा बंगलौर में दिनांक 14.09.2013 को पारित पत्र जिसमें मुख्य न्यायाधीश ने श्री जी भवानी सिंह को एसपीपी के पद से हटाने का अनुमोदन किया है और साथ ही राज्य सरकार द्वारा दिनांक 16.09.2013 को जारी परिणाम के आदेश में प्रत्यर्थी संख्या 4 को एसपीपी के पद से हटा दिया गया है।

2. तमिलनाडु राज्य में वर्ष 1996-1997 में अपनी ज्ञात आय से अधिक संपत्ति रखने के लिए याचिकाकर्ताओं के खिलाफ अभियोजन शुरू

किया गया था। थिरु। के. अनबझगन (प्रत्यर्थी संख्या 5) याचिकाकर्ता नंबर 1 के राजनीतिक प्रतिद्वंद्वी हैं, जो कई मौकों पर तमिलनाडु के मुख्यमंत्री रहे हैं। याचिकाकर्ताओं ने न्याय के हित में याचिकाकर्ताओं के विचारण को पड़ोसी राज्य कर्णाटक में स्थानांतरित करने के लिए दिनांक 18-11-2003 को इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया था ,इस आधार पर कि तमिलनाडु राज्य में निष्पक्ष विचारण संभव नहीं है। मामलों को कर्णाटक राज्य को हस्तांतरित करते समय, एसपीपी की नियुक्ति के लिए इस न्यायालय ने निम्नलिखित निदेश जारी किए :-

> "कर्नाटक राज्य कर्नाटक उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के परामर्श से इन मामलों के संचालन के लिए लोक अभियोजक के रूप में आपराधिक परीक्षणों में अनुभव रखने वाले एक वरिष्ठ वकील को नियुक्त करेगा। इस प्रकार नियुक्त लोक अभियोजक अपनी पसंद के किसी अन्य वकील की सहायता का हकदार होगा। लोक अभियोजक और सहायक की फीस और अन्य सभी खर्चों का भुगतान कर्नाटक राज्य द्वारा किया जाएगा, जो बाद में तमिलनाडु राज्य से प्रतिपूर्ति प्राप्त करने का हकदार होगा।

(जोर दिया गया)

3. दिनांक 19-02-2005 को कर्नाटक सरकार ने कर्णाटक उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के परामर्श के पश्चात् पूर्व महाधिवक्ता श्री बीवी आचार्य को अभियोजन चलाने के लिए एसपीपी नियुक्त किया। दिनांक 12-08-2012 को श्री आचार्य ने एसपीपी के रूप में बने रहने में असमर्थता व्यक्त की। कर्णाटक सरकार ने जनवरी,2013 में उनका इस्तीफा स्वीकार कर लिया और उन्हें मामले से मुक्त कर दिया।

4. कर्नाटक सरकार ने तब एक नए एसपीपी की नियुक्ति के लिए प्रक्रिया शुरू की और इस न्यायालय के निर्देशों के अनुसार, मुख्य न्यायाधीश द्वारा विचार के लिए उच्च न्यायालय को चार अधिवक्ताओं के नाम प्रस्तुत किए।

5. कर्नाटक उच्च न्यायालय के कार्यवाहक मुख्य न्यायाधीश ने 29.1.2013 को नियुक्ति के लिए प्रत्यर्थी संख्या 4 श्री जी. भवानी सिंह के नाम की सिफारिश की, हालांकि उनका नाम कर्नाटक सरकार द्वारा प्रस्तुत नहीं किया गया था। कर्नाटक सरकार ने इसे स्वीकार कर लिया और श्री जी भवानी सिंह को एसपीपी नियुक्त करने की अधिसूचना जारी की। दिनांक 2.2.2013 को अधिसूचना जारी होने के बाद, श्री जी. भवानी सिंह ने काम करना शुरू कर दिया और 28.02.2013 और 29.7.2013 के बीच बचाव पक्ष के 99 गवाहों से पूछताछ की गई और 384 रक्षा प्रदर्शों को चिह्नित किया गया। बचाव पक्ष ने 2-8-2013 को बहस शुरू की और इसे समाप्त

कर दिया। तथापि, 13-8-2013 को प्रत्यर्थी संख्या 5 ने सीआरपीसी की धारा 301(2) के तहत एक आवेदन दायर किया था। विशेष न्यायाधीश ने दिनांक 21.8.2013 के आदेश के तहत प्रत्यर्थी संख्या 5 को दलीलों का ज्ञापन दाखिल करने और एसपीपी को ऐसी सहायता प्रदान करने की अनुमति दी जिसकी उसे आवश्यकता हो सकती है। प्रत्यर्थी संख्या 5 ने 23.8.2013 को ट्रायल कोर्ट के समक्ष दो आवेदन दायर किए, एक सीआरपीसी की धारा 309 के तहत 4 सप्ताह के लिए स्थगन की मांग कीऔर दूसरा सीआरपीसी की धारा 311 के तहत पीडब्ल्यू .259, जांच अधिकारी (जिसकी परीक्षा 24.2.2003 को समाप्त हो गई थी) को वापस बुलाने और न्यायालय के गवाह के रूप में उसे परीक्षित करने के लिए।

6. दिनांक 26.08.2013 को कर्नाटक सरकार ने एक अधिसूचना जारी कर बिना कोई कारण बताए और कर्नाटक उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश से परामर्श किए बिना एसपीपी के रूप में प्रत्यर्थी संख्या 4 की नियुक्ति वापस ले ली।

7. याचिकाकर्ताओं ने मुकदमे में देरी की आशंका को देखते हुए भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 (इसके बाद 'संविधान' के रूप में संदर्भित) के तहत 2013 की रिट याचिका (आपराधिक) संख्या 145 दायर करके एसपीपी के रूप में प्रत्यर्थी नंबर 4 को हटाने को चुनौती देते हुए इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया। इस न्यायालय ने प्रतिवादियों को

दिनांक 30.08.2013 को नोटिस जारी किया। दिनांक 06.09.2013 को कर्नाटक राज्य की ओर से महान्यायवादी श्री जीई वाहनवती उपस्थित हुए और न्यायालय को सूचित किया कि कर्नाटक उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश से परामर्श करने की दृष्टि से दिनांक 26-08-2013 की अधिसूचना को वापस ले लिया जाएगा। इसे ध्यान में रखते हुए, पूर्व-वर्णित रिट याचिका को निष्फल होने के कारण खारिज कर दिया गया था।

8. राज्य सरकार ने दिनांकित 10.9.2013 की अधिसूचना के माध्यम से दिनां कित 26.8.2013 की अधिसूचना वापस ले ली और साथ ही, उसी तारीख के पत्र के माध्यम से, श्री जी. भवानी सिंह, प्रत्यर्थी संख्या 4 को विशेष न्यायाधीश के समक्ष मामले में उपस्थित नहीं होने के लिए कहा। याचिकाकर्ताओं ने तब 2013 की वर्तमान रिट याचिका (आपराधिक) संख्या 154 दायर की, जिसमें प्रत्यर्थी संख्या 4 को लिखे गए उक्त पत्र को चुनौती दी गई और विद्वान विशेष न्यायाधीश को विचारण को समाप्त करने का निर्देश चाहा गया। दिनांक 13-09-2013 को इस न्यायालय ने दस दिनों में वापस करने योग्य नोटिस जारी किया और प्रत्यर्थी संख्या 1-2 द्वारा जारी पत्र संख्या कानून 149 एलसीई 2012 दिनांक 10.9.2013. के प्रचालन पर रोक लगा दी।

9. जबकि पूर्व-वर्णित रिट याचिका इस न्यायालय में लंबित थी, कर्नाटक सरकार ने एसपीपी के रूप में प्रत्यर्थी संख्या 4 की नियुक्ति को

वापस लेने के लिए कर्नाटक उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश से परामर्श किया। मुख्य न्यायाधीश ने दिनांक 14.9.2013 के पत्र के माध्यम से राज्य सरकार के दृष्टिकोण से सहमति व्यक्त की और इस प्रकार, कर्नाटक सरकार द्वारा दिनांक 16.9.2013 की अधिसूचना संख्या कानून 149 एलसीई 2012 के तहत श्री जी भवानी सिंह की नियुक्ति वापस ले ली गई।

10. व्यथित, याचिकाकर्ताओं ने 2013 की रिट याचिका (आपराधिक) संख्या 166 दायर की है, जिसमें दिनांक 14.9.2013 और 16.9.2013 के उक्त आदेशों को चुनौती दी गई है।

11. दोनों याचिकाओं पर एक साथ सुनवाई हुई है।

याचिकाकर्ताओं की ओर से पेश वरिष्ठ वकील श्री शेखर नफाडे और श्री यूयू ललित ने प्रस्तुत किया कि यह स्थापित कानून है कि एक अभियुक्त को संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत गारंटीकृत त्वरित सुनवाई का अधिकार है; एसपीपी के रूप में प्रत्यर्थी नंबर 4 की नियुक्ति को वापस लेने का आदेश 30 सितंबर 2013 को विद्वान विशेष न्यायाधीश की आसन्न सेवानिवृत्ति के मद्देनजर मुकदमे को आगे बढ़ाने के लिए एक सोचा-समझा कदम है; और कोई भी न्यायाधीश जो मामले को संभालता है, उसे लंबे रिकॉर्ड से परिचित होने के लिए काफी समय की आवश्यकता होगी क्योंकि रिकॉर्ड किए गए साक्ष्य मौखिक और दस्तावेजी 34000 पृष्ठों में हैं; मुकदमा लगभग पूरा हो गया है क्योंकि अभियोजन और बचाव पक्ष के पूरे

साक्ष्य दर्ज किए गए हैं और दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (इसके बाद 'सीआरपीसी' के रूप में संदर्भित) की धारा 313 के तहत आरोपी व्यक्तियों (याचिकाकर्ताओं) के बयान भी दर्ज किए गए हैं; एसपीपी के कामकाज के छह महीने बाद उनकी नियुक्ति को वापस लेना दुर्भावनापूर्ण तरीके से प्रेरित है ताकि मुकदमे को आगे बढ़ाया जा सके क्योंकि कर्नाटक राज्य में सरकार का परिवर्तन हुआ है; वर्तमान मामला भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 (इसके बाद 'अधिनियम 1988' के रूप में संदर्भित) के तहत वारंट मामला होने के कारण, बचाव पक्ष की अंतिम दलीलें पहले ही समाप्त हो चुकी हैं। आखिरकार, विद्वान वकील के अनुसार, मुकदमे का निर्धारित निष्कर्ष असंभव हो गया है और याचिकाकर्ताओं को लंबे समय तक विचाराधीन रहने की संभावना का सामना करना पड़ता है, जो आगामी चुनावों में उनके प्रतिद्वंद्वियों को राजनीतिक लाभ देगा। इसके मद्देनजर, इस न्यायालय को एसपीपी के रूप में प्रत्यर्थी नंबर 4 की नियुक्ति को वापस लेने/रद्द करने के आदेश को रद्द करना चाहिए और इस मुकदमे के समापन तक विद्वान विशेष न्यायाधीश के कार्यकाल की अवधि को आगे बढ़ाना चाहिए।

12. अटॉर्नी जनरल श्री जीई वाहनवती ने तर्क दी या कि नियुक्ति को रद्द करने का कार्य काफी हद तक सामान्य खंड अधिनियम की धारा 21 के तहत है और नियुक्ति के समान तरीके से किया गया है यानी कर्नाटक उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के परामर्श के बाद, जैसा कि इस न्यायालय द्वारा परिकल्पित किया गया है। अटॉर्नी जनरल के अनुसार, नियुक्ति को रद्द

करने का मुख्य कारण यह था कि नियुक्ति उचित परामर्श के बाद नहीं की गई थी क्योंकि श्री जी भवानी सिंह का नाम कर्नाटक सरकार द्वारा एसपीपी के रूप में नियुक्ति के लिए कर्नाटक उच्च न्यायालय के तत्कालीन कार्यवाहक मुख्य न्यायाधीश को प्रस्तुत चार नामों में से किसी में भी स्थान पर नहीं था। परामर्श के सही उद्देश्य के विपरीत कार्रवाई में, कार्यवाहक मुख्य न्यायाधीश ने स्वयं श्री जी भवानी सिंह के नाम की सिफारिश की, इस प्रकार नाम पर किसी भी परामर्श को रोक दिया। इसके अतिरिक्त, संविधान के अनुच्छेद 142 के अधीन अपनी असाधारण शक्ति का प्रयोग करते हुए यह न्यायालय कर्नाटक सरकार को विशेष न्यायाधीश को 30-9-2013 को अधिवषता की आयु तक पहुंचने के बाद सेवा में बने रहने की अनुमति देने के लिए बाध्य नहीं कर सकता है। इसलिए, याचिकाओं में योग्यता का अभाव है और वे खारिज किए जाने योग्य हैं।

13. प्रत्यर्थी संख्या 5 की ओर से उपस्थित वरिष्ठ वकील श्री विकास सिंह ने तर्क दिया है कि याचिकाकर्ता स्वयं मुकदमे में विलंबकारी की रणनीति अपना रहे हैं और यह केवल हाल के दिनों में है कि वे बहुत समयनिष्ठ हो गए हैं और विद्वान विशेष न्यायाधीश को जल्दबाजी में मामले में आगे बढ़ने के लिए मजबूर कर रहे हैं। मुकदमे की सुनवाई अनुचित तरीके से की गई और इसका एक उदाहरण यह है कि अभियोजन पक्ष की दलीलों से पहले विद्वान विशेष न्यायाधीश द्वारा बचाव पक्ष की दलीलों को ग्रहण किया गया था। श्री जी भवानी सिंह को कर्नाटक उच्च न्यायालय के

कार्यकारी मुख्य न्यायाधीश के सुझाव पर नियुक्त किया गया था, हालांकि राज्य सरकार द्वारा भेजे गए पैनल में उनका नाम नहीं था। इस प्रकार, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, कोई हस्तक्षेप आवश्यक नहीं है और याचिकाएं खारिज की जा सकती हैं।

14. हमने सभी पक्षों के विद्वान वकीलों को सुना है और कर्नाटक उच्च न्यायालय द्वारा हमारे समक्ष पेश किए गए रिकॉर्ड का अवलोकन किया है।

15. कर्नाटक सरकार द्वारा श्री जी भवानी सिंह को एसपीपी के पद से हटाने का जो कारण बताया गया है, वह कुछ असामान्य प्रतीत होता है। यह सच हो सकता है कि श्री जी भवानी सिंह का नाम कर्नाटक सरकार द्वारा उच्च न्यायालय के तत्कालीन कार्यवाहक मुख्य न्यायाधीश को प्रस्तुत चार नामों की सूची में नहीं था और यह नाम कर्णाटक सरकार द्वारा एसपीपी की नियुक्ति किए जाने से पहले कार्यवाहक मुख्य न्यायाधीश से लिया गया था; लेकिन यह भी उतना ही सच है कि नियुक्ति सरकार द्वारा पदधारी की क्षमता या उपयुक्तता पर सवाल उठाए बिना की गई थी और न ही सरकार ने परामर्श के तरीके/मुद्दे के संबंध में कोई मुद्दा उठाया था। इसके विपरीत, सिफारिश प्राप्त करने पर, सरकार बिना किसी आपत्ति के अधिसूचना जारी करके श्री जी. भवानी सिंह को नियुक्त करने के लिए आगे

बढ़ी। इसके अलावा नियुक्ति लगभग सात महीने तक बिना किसी विरोध के जारी रही।

16. हमारे समक्ष भी, उत्तरदाताओं द्वारा एसपीपी के रूप में प्रत्यर्थी संख्या 4 की पात्रता, उपयुक्तता या विश्वसनीयता के संबंध में कोई मुद्दा नहीं उठाया गया है।

कर्नाटक उच्च न्यायालय के विद्वान महापंजीयक द्वारा राज्य सरकार को प्रेषित पत्र दिनांकित 29.01.2013 में श्री भवानी सिंह के अनुभव का वर्णन निम्नानुसार किया गया है-

> "श्री जी भवानी सिंह, जो वर्तमान में राज्य लोक अभियोजक -2 के रूप में काम कर रहे हैं, को बार में विशेष रूप से आपराधिक पक्ष पर 38 वर्षों का स्थायी अनुभव है, उन्होंने बचाव पक्ष के वकील के रूप में ट्रायल कोर्ट के समक्ष मामलों का संचालन किया है और उन्होंने 1977 से कर्नाटक उच्च न्यायालय में 3 साल की अवधि के लिए सरकारी वकील के रूप में और 3 साल की अवधि के लिए अतिरिक्त लोक अभियोजक के रूप में और वर्तमान में पिछले 8 वर्षों से कर्नाटक उच्च न्यायालय में राज्य लोक अभियोजक के रूप में कार्य कर रहे हैं।

17. जब भी कानून द्वारा परामर्श अनिवार्य होता है, तो इसमें आवश्यक रूप से दो प्राधिकरण शामिल होते हैं। एक, जिस पर परामर्श करने के लिए एक कर्तव्य डाला जाता है और दूसरा जिसके पास परामर्श करने का संबंधित अधिकार है। यह शिकायत कि कोई परामर्शनहीं किया गया है या अपर्याप्त परामर्श, आमतौर पर उस प्राधिकारी द्वारा उठाया जाता है, जिसे परामर्श लेने का अधिकार है, इस मामले में मुख्य न्यायाधीश। जिस प्रकार का यह कर्तव्य है कि वह परामर्श करे और जो उस कर्तव्य में विफल रहा हो, उसके लिए यह शिकायत करना वैध नहीं है कि कोई परामर्श नहीं किया गया है। वर्तमान मामले में ठीक यही हुआ है। यदि सरकार को कार्यवाहक मुख्य न्यायाधीश द्वारा भेजा गया श्री जी भवानी सिंह का नाम किसी भी आधार पर स्वीकार्य नहीं लगता है, तो यह उनके विचारों और सुझावों के साथ कार्यवाहक मुख्य न्यायाधीश के नाम को वापस भेजने के लिए बाध्य था, जो उनके द्वारा नहीं किया गया था। इसके विपरीत, उन्होंने श्री जी भवानी सिंह को बिना किसी आपत्ति के एसपीपी के रूप में नियुक्त किया, जो पहले से ही कई वर्षों तक लोक अभियोजक रहे थे। रिकॉर्ड में ऐसा कुछ भी नहीं है जिससे यह संकेत मिले कि कर्नाटक सरकार को उक्त नियुक्ति करने के लिए किसी ने मजबूर किया था। इस प्रकार सरकार स्वेच्छा से इस प्रक्रिया को स्वीकार कर लिया और अब वह इस शिकायत को उठाने की हकदार नहीं है। इस प्रकार शिकायत निराधार है और इसमें कोई विश्वास नहीं है।

मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, कर्नाटक उच्च न्यायालय के माननीय मुख्य न्यायाधीश ने अपने पत्र में जिन निर्णयों पर भरोसा किया, वे कर्नाटक सरकार द्वारा एसपीपी के रूप में प्रत्यर्थी संख्या 4 की नियुक्ति को वापस लेने के लिए दिए गए सुझाव से सहमत थे, विशेष रूप से चंद्रमौलेश्वर प्रसाद बनाम पटना उच्च न्यायालय और अन्य, ए. आई. आर. 1970 एस. सी. 370; भारत संघ बनाम संकलचंद हिमतलाल शेठ और अन्य, ए. आई. आर. 1977 एस. सी. 2328; गुजरात राज्य बनाम गुजरात राजस्व न्यायाधिकरण बार एसोसिएशन, ए. आई. आर. 2013 एस. सी. 107; और गुजरात राज्य और अन्य; वी. न्यायमूर्ति आर. ए. मेहता (सेवानिवृत्त) और अन्य। ,(2013) 3 एस. सी. सी. 1 लागू नहीं होते है।

18. हम यह दर्ज कर सकते हैं कि यद्यपि कर्नाटक के मुख्य न्यायाधीश के दिनांक 14.09.2013 के पत्र की कुछ आलोचना की गई थी, जिसमें श्री जी. भवानी सिंह की नियुक्ति को रद्द करने को मंजूरी दी गई थी और उसमें कुछ टिप्पणियां की गई थीं, फिर भी हम पत्र के गुण, दोष या वैधता पर जाने के इच्छुक नहीं हैं। सबसे पहले, उक्त पत्र एक आदेश नहीं है जो याचिकाकर्ताओं के किसी भी अधिकार को प्रभावित कर सकता है। यह श्री जी भवानी सिंह को हटाने के लिए परामर्श के दौरान दी गई मंजूरी मात्र है, जिन्होंने उन्हें हटाए जाने पर सवाल नहीं उठाया है। याचिकाकर्ताओं ने श्री जी भवानी सिंह को हटाने की राज्य सरकार की कार्रवाई की वैधता

को इस आधार पर चुनौती दी है कि इस प्रकार त्वरित सुनवाई के लिए अनुच्छेद 21 के तहत मौलिक अधिकारों का उल्लंघन किया गया है। इन परिस्थितियों में, माननीय मुख्य न्यायाधीश द्वारा लिखे गए पत्र की सामग्री की शुद्धता या अन्यथा पर उच्चारण करना आवश्यक नहीं है।

19. प्रत्यर्थी संख्या 5 की ओर से उपस्थित वरिष्ठ वकील श्री विकास सिंह ने मामले को कर्नाटक राज्य में स्थानांतरित किए जाने के बाद पूरी कार्यवाही का उल्लेख किया और प्रस्तुत किया कि अभियोजन बहुत ही अवांछनीय तरीके से आगे बढ़ रहा है, विशेष रूप से, एसपीपी के रूप में श्री जी भवानी सिंह की नियुक्ति के बाद। विद्वान वकील के अनुसार, जांच अधिकारी को बचाव पक्ष के गवाह के रूप में पूछताछ करने की अनुमति दी गई है और विशेष न्यायाधीश ने एसपीपी की अनुपस्थिति में भी कुछ आदेश पारित किए हैं। याचिकाकर्ताओं की ओर से पेश वरिष्ठ वकील श्री नफाडे ने इन आरोपों को तथ्यात्मक रूप से गलत बताया है। हालांकि, हम इन सभी प्रस्तुतियों पर विचार करने के इच्छुक नहीं हैं क्योंकि वे पूरी तरह से अलग जांच का विषय होंगे और कथित अवैध कार्यवाही और आदेश, यदि कोई हो, को अलग से चुनौती दी जा सकती है। श्री विकास सिंह द्वारा यह भी तर्क दिया गया कि विशेष न्यायाधीश ने अभियोजन पक्ष की दलीलों से पहले बचाव पक्ष को अपनी बहस शुरू करने की गलत अनुमति दी है। दूसरी ओर, याचिकाकर्ताओं के अनुसार, यह इस तथ्य के मद्देनजर पूरी तरह से स्वीकार्य है कि यह अधिनियम 1988 की धारा 13 के तहत

एक अभियोजन है और ऐसा होने के नाते, बचाव पक्ष सहित कोई भी पक्ष दण्ड प्रक्रिया सहिता की धारा 314 के आधार पर अपने साक्ष्य के बंद होने पर अपनी दलीलें शुरू करने का हकदार है, जो वारंट मामलों पर लागू होता है। इसके अलावा, अधिनियम 1988 की धारा 5 के तहत, इस अधिनियम के तहत मामलों पर वारंट मामलों के रूप में विचारण किया जा सकता है और इसलिए, इस संबंध में कोई अवैधता नहीं है।

प्रतिवादियों का तर्क है कि केवल अभियोजन पक्ष को अपनी दलीलें शुरू करनी चाहिए, दण्ड प्रक्रिया सहिता की धारा 234 पर आधारित है, जो वर्तमान विचारण पर बिल्कुल भी लागू नहीं होती है। वर्तमान विवाद के दायरे को ध्यान में रखते हुए, हम इस प्रश्न पर निर्णय लेना भी आवश्यक या उचित नहीं समझते हैं।

20. तत्काल मामले में, जैसा कि बहस के दौरान खुलासा किया गया है, मई 2013 में सत्ता में राजनीतिक दल का परिवर्तन हुआ है और इस प्रकार, राज्य सरकार के आदेश को राजनीति से प्रेरित होने का आरोप लगाया गया है। हमारी राय में, हालांकि सरकार के पास सामान्य खंड अधिनियम की धारा 21 के तहत नियुक्ति को वापस लेने या रद्द करने की निस्संदेह शक्ति है, लेकिन शक्ति का वह प्रयोग दूषित प्रतीत होता है वर्तमान मामले में कानून में दुर्भावना से क्योंकि यह रिकॉर्ड पर स्पष्ट है कि बीच में सरकार के बदलने के परिणामस्वरूप अचानक राय में बदलाव हुआ

है जो बिना किसी विवेकपूर्ण कानूनी रूप से स्थायी कारण के अचानक है। तेज अवस्था परिवर्तनकालीन निर्णय एक ऐसे इरादे से प्रेरित स्पष्ट रूप से अनुचित अविवेक का कार्य था जो नेक नियत पर आधारित प्रतीत नहीं होता है।

21. मामले के रिकॉर्ड से पता चलता है कि विद्वान विशेष न्यायाधीश ने 20.11.2012 को वर्तमान मामले की सुनवाई शुरू की थी। उन्होंने दण्ड प्रक्रिया सहिता की धारा 313 के तहत दिसंबर 2012 और जनवरी 2013 में आरोपियों के बयान दर्ज किए थे। न्यायाधीश ने बचाव पक्ष के 99 गवाहों को परिक्षित किया और उनके समक्ष बचाव पक्ष के 384 साक्ष्य पेश किए गए। बचाव पक्ष ने विशेष न्यायाधीश के समक्ष अपनी बहस पूरी की और एसपीपी ने 23.08.2013 को अंतिम बहस शुरू कीं। उन्हें अचानक रोक दिया गया क्योंकि 26-08-2013 को एसपीपी को कार्य जारी न रखने के लिए कहा गया था। इस मामले में साक्ष्य बहुत भारी है क्योंकि यह 34000 पृष्ठों का है। यदि कोई नया न्यायाधीश मामले की सुनवाई शुरू करता है, तो उसे मामले में शामिल तथ्यात्मक और कानूनी बारीकियों को समझने में लंबा समय लगेगा। तदनुसार, हमें यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि एसपीपी के रूप में श्री जी भवानी सिंह की नियुक्ति को रद्द करने संबंधी अधिसूचना रद्द किये जाने योग्य है।

22. तमिलनाडु राज्य और अन्य बनाम के. श्याम सुंदर और अन्य, ए.आई.आर 2011 एस.सी. 3470 के मामले में इस न्यायालय ने कहा है कि सरकार को निहित स्वार्थों और भाई-भतीजावाद के गठजोड़ से ऊपर उठना होगा और बाहरी दिखावा बंद करना होगा। शासन के सिद्धांतों का परीक्षण न्याय, समानता और निष्पक्षता की कसौटी पर किया जाना चाहिए। एक निर्णय वैध लग सकता है, लेकिन वास्तव में, यदि कारण मूल्यों पर आधारित नहीं हैं, बल्कि लोकप्रिय प्रशंसा प्राप्त करने के लिए हैं, तो निर्णय को संचालित करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। इसलिए, जब तक यह नहीं पाया जाता कि प्राधिकरण द्वारा पहले किया गया कार्य या तो वैधानिक प्रावधानों के विपरीत है या अनुचित है, या सार्वजनिक हित के खिलाफ है, तब तक राज्य को केवल इसलिए अपना रुख नहीं बदलना चाहिए क्योंकि दूसरा राजनीतिक दल सत्ता में आ गया है। "किसी व्यक्ति या राजनीतिक दल का राजनीतिक एजेंडा कानून के शासन का विध्वंसक नहीं होना चाहिए।"

(यह भी देखें: एम.आई. बिल्डर्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम बनाम राधेश्याम साहू और अन्य, एआईआर 1999 एससी 2468; ओंकार लाल बजाज आदि भारत संघ और उत्तर प्रदेश आदि, एआईआर 2003 एससी 2562; कर्नाटक राज्य और उत्तर प्रदेश ऑल इंडिया मैन्युफैक्चरर्स ऑर्गनाइजेशन एंड अन्य, एआईआर 2006 एस.सी 1846; और ए.पी. डेयरी

डेवलपमेंट कॉरपोरेशन फेडरेशन बनाम बी. नरसिम्हा रेड्डी एंड अन्य, एआईआर 2011 एससी 3298)।

23. श्रीमती एस. आर. वेंकटरमन बनाम भारत संघ और अन्य, एआईआर 1979 एससी 49 मामले में, इस न्यायालय ने कानूनी दुर्भावना की अवधारणा की व्याख्या करते हुए कहा कि अपने कानूनी अर्थों में द्वेष का अर्थ द्वेष है, जैसे कि जानबूझकर गलत कार्य करने से माना जा सकता है, लेकिन बिना किसी कारण या बहाने के, या उचित या संभावित कारण की कमी के लिए।

24. रवि यशवंत भोइर बनाम जिला कलेक्टर रायगढ़ व अन्य, ए. आई. आर. 2012 एस. सी. 1339, इस मुद्दे पर विचार करते हुए, यह न्यायालय ने कहाः

> "37 ... कानूनी दुर्भावना" या "कानून में दुर्भावना" का अर्थ है वैध बहाने के बिना किया गया कुछ। यह दूसरों के अधिकारों की उपेक्षा करने वाला जानबूझकर किया गया कार्य है। यह एक ऐसा कार्य है जो एक परोक्ष या अप्रत्यक्ष इरादे के साथ लिया जाता है। यह उचित या संभावित कारण के बिना गलत तरीके से और जानबूझकर किया गया कार्य है, और जरूरी नहीं कि यह एक ऐसा कार्य हो जो दुर्भावना और संकोच से किया गया हो। सत्ता के दुर्भावनापूर्ण प्रयोग

का अर्थ कोई नैतिक अधमता नहीं है। इसका अर्थ है "उन उद्देश्यों के लिए वैधानिक शक्ति का प्रयोग करना जिनके लिए यह कानून में है। इसका अर्थ है दूसरे के पूर्वाग्रह के लिए कानून का सचेत उल्लंघन, दूसरों के अधिकारों की उपेक्षा करने के लिए प्राधिकरण की ओर से एक भ्रष्ट झुकाव, जहां इरादा इसके हानिकारक कृत्यों से प्रकट होता है। अनधिकृत उद्देश्य के लिए आदेश पारित करना कानून में द्वेषपूर्ण है।''

(यह भी देखें: कलाभारती विज्ञापन बनाम हेमंत विमलनाथ नरिचानिया और अन्य, एआईआर 2010 एससी 3745)।

25. इस प्रकार, यह स्पष्ट कानून है कि यदि विवेकाधीन शक्ति का उपयोग अनधिकृत उद्देश्य के लिए किया गया है, तो यह आम तौर पर महत्वहीन है कि इसका निदान अच्छी नियत से काम कर रहा था या बुरे इरादे से और आदेश कमजोर हो जाता है और रद्द करने के लिए उत्तरदायी हो जाता है।

26. निष्पक्ष सुनवाई आपराधिक प्रक्रिया का मुख्य उद्देश्य है और इस तरह की निष्पक्षता को किसी भी तरह से बाधित या धमकी नहीं दी जानी चाहिए। निष्पक्ष सुनवाई में आरोपी, पीड़ित और समाज के हित शामिल हैं। इस प्रकार, जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार की भावना के साथ

प्रत्येक अभियुक्त को निष्पक्ष सुनवाई दी जानी चाहिए और अभियुक्त को आपराधिक मामले में आरोपित आरोप पर एक स्वतंत्र और निष्पक्ष, न्यायसंगत और उचित सुनवाई मिलनी चाहिए। सार्वजनिक अधिकारों और कर्तव्यों का कोई भी उल्लंघन पूरे समुदाय पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है और यह सामान्य रूप से समाज के लिए हानिकारक हो जाता है। सभी परिस्थितियों में, न्यायालयों का कर्तव्य है कि वे न्याय के प्रशासन में जनता के विश्वास को बनाए रखें और इस तरह का कर्तव्य 'कानून की महिमा' को प्रमाणित करना और बनाए रखना है और अदालतें आपराधिक कार्यवाही के संबंध में होने वाले कष्टप्रद या दमनकारी आचरण से आंखें नहीं मूंद सकती हैं।

निष्पक्ष सुनवाई से इनकार करना आरोपी के साथ भी उतना ही अन्याय है जितना कि पीड़ित और समाज के साथ। इसके लिए जरूरी है कि एक निष्पक्ष न्यायाधीश, एक निष्पक्ष अभियोजक के समक्ष सुनवाई हो और न्यायिक शांति का माहौल हो। चूंकि मुकदमे का उद्देश्य न्याय दिलाना और दोषियों को दोषी ठहराना और निर्दोषों की रक्षा करना है, इसलिए मुकदमा सच्चाई की खोज होना चाहिए, न कि तकनीकी बातों पर लड़ाई और ऐसे नियमों के तहत आयोजित किया जाना चाहिए जो निर्दोषों की रक्षा करेंगे और दोषी को दंडित करेंगे। न्याय न केवल किया जाना चाहिए, बल्कि ऐसा प्रतीत होना चाहिए कि न्याय किया गया है। इसलिए, स्वतंत्र और निष्पक्ष सुनवाई संविधान के अनुच्छेद 21 का एक अनिवार्य हिस्सा है।

निष्पक्ष सुनवाई का अधिकार न केवल एक बुनियादी मौलिक अधिकार है, बल्कि एक मानव अधिकार भी है। इसलिए, निष्पक्ष सुनवाई में कोई भी बाधा संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन हो सकती है।

> "अभियोजन एजेंसी या राज्य मशीनरी की सुस्ती के कारण किसी भी मुकदमे को अनिश्चित काल तक चलने की अनुमति नहीं दी जा सकती है और यही कारण है की मुकदमे के समापन के लिए समय सीमा निर्धारित की जाती है।

मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा के अनुच्छेद 12 में हमारे संविधान के अनुच्छेद 21 में निहित निष्पक्ष सुनवाई के अधिकार का प्रावधान है। इसलिए, निष्पक्ष सुनवाई आपराधिक न्यायशास्त्र का दिल है और एक तरह से, लोकतांत्रिक राजनीति का एक महत्वपूर्ण पहलू है और कानून के शासन द्वारा शासित है। निष्पक्ष सुनवाई से इनकार करना मानवाधिकारों को सूली पर चढ़ाना है। (खाली: श्रीमती त्रिवेणीबेन बनाम गुजरात राज्य, एआईआर 1989 एससी 1335; ए.आर. अंतुले और अन्य बनाम आर. एस. नायक, एआईआर 1992 एससी 1701; राज देव शर्मा (द्वितीय) बिहार राज्य, (1999) 7 एससीसी 604; द्वारका प्रसाद अग्रवाल (मृ.) विधिक प्रतिनिधि और अन्य बनाम बी.डी. अग्रवाल और अन्य, एआईआर 2003 एससी 2686; के. अनबझगन बनाम पुलिस अधीक्षक,

एआईआर 2004 एससी 524; जाहिरा हबीबुल्लाह शेख (5) बनाम गुजरात राज्य, एआईआर 2006 एससी 1367; नूर आगा बनाम पंजाब राज्य और आंध्र, (2008) 16 एससीसी 417; कैप्टन अमरिंदर सिंह बनाम प्रकाश सिंह बादल और अन्य, (2009) 6 एससीसी 260; मो. हुसैन @ जुल्फिकार अली बनाम राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली सरकार), एआईआर 2012 एससी 750; सीबीआई के माध्यम से सुदेवानंद बनाम राज्य, (2012) 3 एससीसी 387; रत्तीराम और अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (2012) 4 एससीसी 516; और नताशा सिंह बनाम सीबीआई, (2013) 5 एससीसी 741)।

27. याचिकाकर्ताओं की ओर से उपस्थित वरिष्ठ वकील श्री नफाडे ने अंत में तर्क दिया कि यह संविधान के अनुच्छेद 142 के तहत शक्तियों के प्रयोग के लिए एक उपयुक्त मामला होगा, जिसमें सक्षम प्राधिकारी को विशेष न्यायाधीश के कार्यकाल का विस्तार करने का निर्देश दिया जाए, जो 30 सितंबर, 2013 को सेवानिवृत्ति की आयु तक पहुंचने वाले हैं।

28. हालांकि, अटॉर्नी जनरल ने प्रस्तुत किया कि यह न्यायालय वर्तमान मामले में संविधान के अनुच्छेद 142 के तहत अपनी शक्तियों का उपयोग नहीं कर सकता है क्योंकि इस तरह की कवायद उन कानूनों के विपरीत होगी जिनके तहत प्रत्येक न्यायाधीश को सेवानिवृत्ति की आयु तक पहुंचने पर सेवानिवृत्त होना चाहिए। अपनी दलील को मजबूत करने के

लिए, अटॉर्नी जनरल ने ए.बी. भास्कर राव बनाम पुलिस निरीक्षक, सीबीआई विशाखापत्तनम, (2011) 10 एससीसी 259 में इस न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया, जिसमें इस न्यायालय ने कहा कि संविधान के अनुच्छेद 142 के तहत शक्तियों का प्रयोग इस न्यायालय द्वारा किसी भी वैधानिक प्रावधानों के उल्लंघन में नहीं किया जा सकता है। हालांकि ऐसी शक्तियां निरंकुश रहती हैं और पूर्ण न्याय करने के लिए सार्वजनिक हित में कोई भी आदेश पारित करने के लिए एक स्वतंत्र अधिकार क्षेत्र बनाती हैं। हालांकि, अधिकार क्षेत्र का ऐसा प्रयोग कानून के किसी भी स्पष्ट प्रावधान के विपरीत नहीं होना चाहिए।

संविधान के अनुच्छेद 142 के तहत शक्तियां अन्याय को रोकने के लिए न्यायालय की सामान्य अंतर्निहित शक्तियों की तुलना में व्यापक स्तर पर हैं। संवैधानिक प्रावधान को बहुत व्यापक दिशा में रखा गया है कि यह "न्याय की धारा को अवरुद्ध या बाधित करने" को रोकता है। तथापि, ऐसी शक्तियों का उपयोग वैधानिक प्रावधानों के अनुरूप किया जाता है।

(यह भी देखें: टेरी ओट एस्टेट्स (पी) लिमिटेड बनाम यूटी, चंडीगढ़ और अन्य, (2004) 2 एससीसी 130; मनीष गोयल बनाम रोहिणी गोयल, एआईआर 2010 एससी 1099; और उत्तर प्रदेश राज्य बनाम संजय कुमार, (2012) 8 एससीसी 537)।

29. हमें विद्वान अटॉर्नी जनरल द्वारा दी गई प्रस्तुतियों में बल मिलता है कि इस न्यायालय को आम तौर पर संविधान के अनुच्छेद 142 के तहत अपनी असाधारण शक्ति का प्रयोग करते हुए पूर्ण न्याय करने के लिए कोई आदेश पारित नहीं करना चाहिए यदि ऐसा आदेश किसी भी वैधानिक प्रावधानों का उल्लंघन करता है। हम यह कहने का इरादा नहीं रखते हैं कि विशेष न्यायाधीश के कार्यकाल को बढ़ाना अवैध होगा, लेकिन यह संबंधित कानून के अनुसार राज्य के अधिकार क्षेत्र के भीतर का मामला है।

अभी तक एक निर्विवाद कानूनी सिद्धांत है कि जब क़ानून किसी विशेष प्रक्रिया का प्रावधान करता है, तो प्राधिकरण को उसी का पालन करना होगा और इसके उल्लंघन में कार्य करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। दूसरे शब्दों में, जहां एक क़ानून को एक निश्चित तरीके से एक निश्चित काम करने की आवश्यकता होती है, उस काम को उस तरह से किया जाना चाहिए और इसके विपरीत बिल्कुल नहीं होना चाहिए। कार्य के अन्य तरीकों या तरीके निहित और आवश्यक रूप से निषिद्ध है। पूर्वोक्त स्थापित कानूनी प्रस्ताव एक कानूनी मैक्सिम पर आधारित है ,जिसका अर्थ है कि यदि कोई क़ानून किसी चीज़ को किसी विशेष तरीके से करने का प्रावधान करता है, तो इसे उस तरीके से और किसी अन्य तरीके से नहीं किया जाना चाहिए और किसी अन्य कार्यप्रणाली का पालन करने की अनुमति नहीं है।

उत्तर प्रदेश राज्य बनाम सिंघारा सिंह और अन्य एआईआर 1964 एससी 358 मामले में, इस न्यायालय ने निम्नानुसार अभिनिर्धारित कियाः

> “ 8. टेलर बनाम टेलर (1876) 1 सीएच डी 426 में अपनाया गया नियम अच्छी तरह से मान्यता प्राप्त है और सार्थक सिद्धांत पर आधारित है। इसका परिणाम यह है कि यदि किसी क़ानून ने किसी कार्य को करने की शक्ति प्रदान की है और उस शक्ति का प्रयोग करने की विधि निर्धारित की है, तो यह आवश्यक रूप से निर्धारित विधि के अलावा किसी अन्य तरीके से कार्य करने पर प्रतिबंध लगाता है। नियम के पीछे सिद्धांत यह है कि अगर ऐसा नहीं होता, तो वैधानिक प्रावधान भी लागू नहीं किया गया होता।”

(यह भी देखें: महालेखाकार, मध्य प्रदेश राज्य बनाम एस.के.दुबे और अन्य, (2012) 4 एससीसी 578)

30. हमने इस संबंध में सांविधिक उपबंधों की योजना की जांच की है। कर्नाटक सिविल सेवा (सामान्य भर्ती) नियम, 1977 राज्य सरकार को कुछ औपचारिकताओं को पूरा करने के बाद एक विशिष्ट अवधि के लिए अनुबंध के आधार पर एक सेवानिवृत्त सरकारी कर्मचारी को नियुक्त करने के लिए अधिकृत करता है। जहां तक न्यायिक अधिकारियों का संबंध है, उनकी सेवाएं कर्नाटक न्यायिक सेवा (भर्ती) नियम, 1983 द्वारा शासित

होती हैं और इसके नियम 3 (2) में न्यायिक अधिकारियों को संविधान के अनुच्छेद 309 के तहत किसी भी कानून या परंतुक के तहत बनाए गए नियमों के आवेदन का प्रावधान है, हालांकि संविधान के अनुच्छेद 233, 234 और 235 के प्रावधानों के अधीन है। 1983 के नियमों को कर्नाटक न्यायिक सेवा (भर्ती) नियम 2004 (इसके बाद 'नियम 2004' के रूप में संदर्भित) द्वारा निरस्त कर दिया गया है और इसके नियम 11 (2) निम्नानुसार है:

> "11(2) किसी भी कानून के तहत समय-समय पर बनाए गए राज्य सिविल सेवाओं के सदस्यों की सेवा की शर्तों को विनियमित करने वाले सभी नियम या भारत के संविधान के अनुच्छेद 309 के परंतुक, अनुच्छेद 233, 234 और 235 के अधीन सिविल न्यायाधीशों (कनिष्ठ खण्ड), सिविल न्यायाधीशों (वरिष्ठ खण्ड) और इन नियमों के तहत भर्ती और नियुक्त जिला न्यायाधीशों पर लागू होंगे।"

इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि राज्य सरकार संविधान के अनुच्छेद 235 के तहत आवश्यक उच्च न्यायालय के परामर्श के साथ, वर्तमान मुकदमे को समाप्त करने के लिए आवश्यक अवधि के लिए अपनी सेवानिवृत्ति के बाद अनुबंध के आधार पर विद्वान विशेष न्यायाधीश को नियुक्त करने के लिए सक्षम है। इसके अलावा, हमारी विनम्र राय में, इस तरह के

कार्यप्रणाली को नियम 2004 के तहत निर्धारित तरीके से अपनाया जाना चाहिए और इसके मद्देनजर, इस मामले पर राज्य सरकार द्वारा उच्च न्यायालय के परामर्श से विचार किए जाने की आवश्यकता है।

31. इसलिए, उपर्युक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, हम इस मामले को प्रशासनिक पक्ष पर निर्णय लेने के लिए कर्नाटक उच्च न्यायालय को भेजते हैं कि क्या संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत गारंटी के अनुसार शीघ्रता से विचारण समाप्त करने के लिए विद्वान विशेष न्यायाधीश की सेवाओं के विस्तार की आवश्यकता है। मामले की तात्कालिकता को देखते हुए, हम कर्नाटक उच्च न्यायालय से अनुरोध करते हैं कि वह इस संबंध में यथाशीघ्र निर्णय ले।

32. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, हमारा सुविचारित मत है कि श्री जी. भवानी सिंह-प्रत्यर्थी संख्या 4 को हटाने का आदेश दुर्भावनापूर्ण है और विवादित आदेश कानून की नजर में टिकाऊ नहीं है अतः इसे रद्द किया जाता है।

33. उपरोक्त टिप्पणियों/निर्देशों के साथ, रिट याचिकाओं का निपटारा किया जाता है।

रिट याचिकाओं का निपटारा किया जाता है।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी श्रीमति हिरल मीणा (आर.जे.एस.) यू.आई.डी. नं. RJ00996 द्वारा किया गया है।

अस्वीकरणः यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझााने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्धेश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और अधिकारिक उद्धेश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्धेश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।